**ओ३म्**

**‘ईश्वर की प्रशंसा होने से क्या वेद अपौरूषेय हो सकते हैं?’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

क्या वेद अपौरूषेय है? यदि हैं तो वेदों में ईश्वर ने स्वयं ही दिये ज्ञान में आदि ऋषियों व भावी मानव पीढि़यों से अपनी प्रशंसा क्यों कराई है? अपनी प्रशंसा करना व कराना मानवीय दोष माना जाता है। ईश्वर तो सबसे बड़ा व महान होने के कारण यदि ऐसा करता है तो यह उचित प्रतीत नहीं होता। ईश्वर को तो यह चाहिये था कि वह वेदों में यह कहता कि मैं एक सर्वव्यापक सत्ता हूं। मेरा स्वरूप व गुण, कर्म व स्वभाव ऐसे व इस प्रकार के हैं। जीवात्माओं की संख्या जीवों के ज्ञान में अनन्त व मेरे ज्ञान में सीमित हैं। इन जीवात्माओं के गुण, कर्म व स्वभाव आदि इस प्रकार के हैं। इसके साथ ज़ड़ प्रकृति का विवरण होना चाहिये था। इसके बाद ईश्वर को संकेत में कहना चाहिये था कि मनुष्य सुखों की प्राप्ति व अपवर्ग अर्थात् मोक्ष के लिए वेदानुसार आचरण व ईशोपासना करे। मनुष्यों के उन कर्तव्यों का वर्णन होना चाहिये था जिससे जीवन सुखी, उन्नत व मोक्षगामी होकर इसकी प्राप्ति करा सके। वेदों की वर्णन शैली को लेकर ऐसी शंकायें प्रायः सुनने को मिलती हैं और यह कई बार उचित भी लगती हंै परन्तु यह विषय गहन होने के साथ साधारण व्यक्तियों की समझ में नहीं आता। हमारे ऋषि-मुनि उच्च कोटि के ज्ञानी होते थे। उनमें से कभी किसी को इस विषय में शंका नहीं हुई। यही कारण है कि वह शत-प्रतिशत ईश्वर व उसके ज्ञान वेद में विश्वास रखते रहें हैं। अब हम शंका से जुड़े अन्य प्रश्नों पर विचार करते हैं।

**eueksgu dqekj vk;Z**

 हम जानते हैं कि जब कभी हमारी यह सृष्टि अर्थात् सूर्य, पृथिवी व चन्द्रमा आदि बन कर वर्तमान की भांति कार्य करना आरम्भ चुके थे और पृथिवी पर मनुष्य जीवन के लिए वायुमण्डल आदि अनुकूल रहा होगा और आवश्यकता के समस्त पदार्थ उपलब्ध रहे होंगे तो मनुष्य आदि प्राणी सृष्टि हुई थी। इससे पहले मनुष्यादि प्राणी पृथिवी पर नहीं थे। अब जिसने इन मनुष्यों को जन्म दिया अर्थात् अमैथुनी सृष्टि में इनकी आत्माओं के शरीर बनाये तो उसका यह दायित्व था कि वह इन्हें ज्ञान भी दे। ज्ञान भाषा में ही निहित होता है अतः उस ज्ञान के साथ भाषा का देना भी आवश्यक था। यह कार्य इस सृष्टि में सृष्टिकर्ता ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता कर नहीं सकती थी, सौभाग्य से वह सर्वव्यापक होने से सर्वत्र विद्यमान थी भी, अतः उसी ईश्वर ने प्रथम वा आदि मनुष्यों में से चार श्रेष्ठ विद्वान जिन्हें चार ऋषि कहते हैं, उन्हें चार वेदों का ज्ञान दिया। यह वेद हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद और जिन्हें ज्ञान दिया वह थे अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा। ईश्वर प्रदत्त वेदों का यह ज्ञान आज भी सुरक्षित है और हमें मन्त्र संहिताओं के रूप में उपलब्ध है। ईश्वर ने क्योंकि वेदों के ज्ञान को वैदिक भाषा में दिया था तथा उनके अर्थ भी ऋषियों को बताये या जनाये थे जिससे वेदाध्ययन की परम्परा का आरम्भ हुआ और वह अनविछन्न रूप से महाभारत काल तक चलती रही। अब प्रश्न है कि ऋषि व चार मनुष्यों जिन्हें ईश्वर ने ज्ञान दिया वह माता-पिता-आचार्यों से शिक्षित न होने के कारण ज्ञानहीन थे। उन्हें किसी भाषा का भी ज्ञान नहीं था तो ईश्वर ने उनको किस प्रकार से ज्ञान दिया। हमें यह भी स्मरण रखना है कि ईश्वर वह सत्ता है जिसने इस ब्रह्माण्ड की रचना की है और उसे इस अपनी बनाई हुई सृष्टि का पूरा-पूरा व ठीक-ठीक ज्ञान है। यहां स्थिति यह है कि ईश्वर माता-पिता-आचार्य की स्थिति में है और ऋषि व मनुष्य एक शिशु के तुल्य है यद्यपि वह युवावस्था में थे। ज्ञान न होने वा ज्ञान के स्तर की दृष्टि से वह शिशु तुल्य ही कहे जायेंगे। हमें लगता है कि सबसे अच्छा तरीका यह है कि मनुष्यों को जिस प्रकार से ईश्वर के प्रति व्यवहार करना है, भक्ति या उपासना करनी है, ध्यान, विचार व चिन्तन करना है या जिस प्रकार से स्तुति व प्रार्थना करती है, वह हमें व मनुष्यों को उसी रूप में अर्थात् शिशु के शब्दों में बोलकर बताना कि जिस रूप में मनुष्यों को ईश्वर के प्रति उन प्रार्थनाओं आदि को प्रस्तुत करना था। यदि वह अपना स्वरूप पूरी तरह व ठीक से न बताता, और एक मनुष्य या उपासक के रूप में वर्णन न करता जैसा कि वेदों में है, तो मनुष्यों को भ्रान्ति होती व हो सकती थी और वह भ्रान्ति फिर प्रलय अवस्था तक विद्यमान रहती। ईश्वर मनुष्यों के स्वभाव, सामथ्र्य तथा कमियों आदि को भलीप्रकार से जानता है। उसने उन सब को जानकर ही सरलतम रूप में वेदों के ज्ञान को मन्त्रों के रूप में प्रस्तुत किया जिससे वह संसार के सभी पदार्थों का भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर सके। जहां तक जीवात्मा की ओर से ईश्वर की स्तुति व प्रार्थना की बात है, यहां भी ईश्वर को उसे जीवात्मा को निभ्र्रान्त ज्ञान देना था। यह निभ्र्रान्त ज्ञान ऐसा होना चाहिये जिसमें ईश्वर के किसी गुण को अतिश्योक्ति रूप में न प्रस्तुत किया गया हो। ठीक-ठीक, पूरा-पूरा जैसा है वैसा ही व उतना ही, न कम न अधिक, यथावत् वर्णन हो। ऐसा ही हमें वेदों में प्राप्त होता है।

हमें अनुभव करते है कि वेद मन्त्रों में जिस प्रकार से ईश्वर विषयक ज्ञान प्रस्तुत किया गया है वह सर्वोत्तम तरीका है, इसमें ईश्वर का किसी प्रकार का अपनी प्रशंसा कराने का अनुचित भाव नहीं है। हां, ईश्वर की सत्य विधि से उपयुक्त स्तुति व प्रार्थना हो सके जिससे मनुष्यों का कल्याण हो, उसके लिए आवश्यकता के अनुरूप मंत्रों का निर्माण कर ईश्वर ने आदि चार ऋषियों को वेदों का ज्ञान ऋषियों की आत्माओं में प्रेरणा द्वारा दिया था। यदि वह ऐसा न करता तो मनुष्य ईश्वर की प्रशंसा करने में संकोच करते क्योंकि तब उनके पास इसका कोई प्रमाण व उदाहरण न होता। उन्हें इसके लिए स्वयं स्तुति के मन्त्रों को बनाना होता जिस पर सर्वसम्मति कराना कठिन होता। वर्तमान समय के उदाहरण से स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाती है जब कि धार्मिक व मजहबी लोग तर्क व प्रमाण युक्त सत्य बात को स्वीकार नहीं करते। यदि ईश्वर वर्तमान मन्त्रों से भिन्न रूप में ज्ञान देता तो इससे परस्पर विवाद भी हो सकते थे जिससे अनेकों का जीवन इस विवाद को हल करने में व्यतीत हो जाता और तब भी शायद कोई निर्णय न हो पाता। इस विवेचन से हमारे मित्र की शंका का समाधान हो जाता है। ईश्वर ने वेदों के जो मन्त्र बनाये और उनमें स्तोता, प्रार्थनाकर्त्ता व उपासक की ओर से ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना के स्तुति व प्रशंसा वाले वचन व शब्द हैं, ऐसा कर ईश्वर ने मनुष्यों पर परम उपकार किया है।

 हमारा निजी अनुभव है कि जब हम विद्यार्थी थे व कक्षा 8 से 12 तक गणित के प्रश्न हल करते थे तो जो प्रश्न हल नहीं होते थे उसमें हमारे घंटों खराब हो जाते थे। तब हमें पाठ्य पुस्तक की कुंजी, टीका या गाइड पुस्तकों का सहारा लेना पड़ता था जिसमें उस प्रश्न को हल करने का हर चरण step दिया गया हो। उसे देख कर हमें जो प्रसन्नता होती थी, इसका अहसास हमें अब भी है। हमने सरकारी सेवा के दौरान निर्वाचन भी कराये हैं। हमें निर्वाचन में जाने से पूर्व प्रशिक्षण दिया जाता था और इलेक्ट्रानिक वोटिगं मशीन में बनावटी वा कृत्रिम mock वोटिंग करके बताया जाता था। जो बात हमें वोटिगं मशीन संबंधी पुस्तक पढ़कर घंटों समझ में नहीं आती थी वह कृत्रिम वोटिंग द्वारा कुछ ही मिनटो में सरलता से समझ में आ जाती थी। इस दृष्टि से वेद में ईश्वर के स्तुति, प्रार्थना व उपासना आदि के मंत्रों में जो ईश्वर के यथार्थ गुणों की यथार्थ प्रशंसा स्तोता की दृष्टि में प्रस्तुत की गई है वह साभिप्राय व आवश्यक होने से इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है और इससे वेदों का अपौरूषेयत्व यथावथ अक्षुण रहता है।

इस विषय में विचार कर लेना उचित होगा कि यदि ईश्वर वेदों के वर्तमान स्वरूप में वेद ज्ञान न देता तो फिर किस रूप में देता और क्या वह परिवर्तित भिन्न रूप इस वर्तमान स्वरूप की ही तरह से उपयोगी होता? ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान व शतक्रतु है। अतः उसकी कृति भी उसके स्वरूप के अनुरूप ही होगी व होनी भी चाहिये। हमारा तात्पर्य है कि मनुष्य एकदेशी, ससीम व अल्पज्ञ है। मनुष्य की कृति से सहस्रों गुणा अधिक महत्वपूर्ण और विलक्षण होना ईश्वर की कृति के लिए अनिवार्य है। क्या वेद इस प्रकार के हैं? इसका उत्तर हमें हां में मिलता है। पहले तो हम वेदों की भाषा पर ही विचार करें। वेदों की भाषा संसार की सभी भाषाओं से भिन्न व सर्वोत्कृष्ट है। यह मानवीय भाषा या कृति न होकर ईश्वर की कृति है। रूढ़ वा मानवीय भाषाओं में एक शब्द के एक या दो अर्थ ही होते हैं। अंग्रेजी में सूर्य के लिए ेनद शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके पर्यायवाची एक दो शब्द और हो सकते हैं परन्तु वैदिक संस्कृत व उसका अनुकरण कर बनी लौकिक संस्कृत में सूर्य के लिए अनेकों पर्यायवाची शब्द हैं। ऐसी भी संज्ञायें या शब्द हैं जिनके पर्यायवाची शब्द एक सौ से अधिक हैं। यह विलक्षणता वैदिक संस्कृत में ही उपलब्ध है। वैदिक संस्कृत की वर्णमाला, व्याकरण, शब्द समाथ्र्य, नये शब्दों के निर्माण की क्षमता व इसमें सरलता आदि भी अन्यतम है। महर्षि दयानन्द, निरूक्त व आर्ष व्याकरण के अनुसार सभी वैदिक शब्द रूढ़ न होकर यौगिक वा धातुज हैं इससे यह ईश्वरीय सिद्ध होते हैं। प्रत्येक वैदिक शब्द का वही क्यों है, इसका उत्तर भी निर्वचन पद्धति से ज्ञात होता है। संसार की किसी भाषा में यह योग्यता, सामर्थ्य व गुण नहीं है। वेदों को काव्य में प्रस्तुत कर सृष्टि के आरम्भ में ही अपनी एक और विलक्षणता का परिचय दिया, उस समय जबकि मनुष्य युवा होकर भी बोलना नहीं जानता था। आज भी यह माना जाता है और प्रयोग में लाया जाता है कि माता अपने नवजात व छोटे शिशु को सुलाने के लिए लोरियां गाती हैं। लोरियों, गानों व काव्य को आसानी से स्मरण किया जा सकता है जबकि गद्य में अधिक समय लगता है। गान काव्य का ही होता है। परमात्मा ने भी सृष्टि के आरम्भ में अपनी भाषा में जिसके अर्थ भी उसने ऋषियों को जनाये थे, काव्य या आम भाषा में लोरियों व गीत सुनाकर ज्ञान दिया था। वेदों के जो मन्त्र हैं उनके अनेक अर्थ किये जा सकते हैं जो सभी उपयोगी होते हैं। महर्षि दयानन्द ने और बाद में उनके अनुयायियों यथा डा. रामनाथ वेदालंकार आदि ने वेद भाष्य करते हुए इनका दिग्दर्शन कराया है। वेद ईश्रीय ज्ञान है, अतः यह उसके स्वरूप की ही तरह सार्वभौमिक व सार्वकालिक होने के साथ सृष्टिक्रम के अनुकूल व अनुरूप हैं। वेद व इसका ज्ञान सदा-सर्वदा प्रासंगिक रहता है तथा दो अरब वर्ष पूर्व प्रदान किये जाने पर यह आज भी पूर्णतया प्रासंगिक व अपूर्व है जिसकी तुलना में संसार का कोई ग्रन्थ नहीं है। वेदों से ही ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है। संसार के वैदिक साहित्य से भिन्न किसी धार्मिक व अन्य ग्रन्थ में यह सामर्थ्य नहीं है। यदि कहीं कुछ है तो वह वेदों से आयातित है। ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति सम्बन्धी सत्य ज्ञान आज भी विज्ञान व वैदिक धर्म से इतर धर्मों-मतों-मजहबों में से किसी के पास या उनकी किसी धार्मिक पुस्तक में नहीं है। ऐसी अनेकानेक विशेषतायें वेदों में हैं, इस कारण सारी मानव जाति वेदों का ज्ञान देने वाले अपने अभीष्ट परमेश्वर व वेदों की रक्षा करने वाले पूर्वजों जिनके कारण आज भी वेदों का ज्ञान अपने मूल स्वरूप में हमें सुरक्षित उपलब्ध है, ऋणी व कृतज्ञ हैं। कुछ अज्ञानी व स्वार्थी लोग इसे मानने को तैयार नहीं हैं, जिसका कारण अज्ञानता के साथ उनका अहंकार है।

हमने विषय को समझने व समझाने का प्रयास किया है। इस पर अनेक दृष्टियों से और भी विचार किया जा सकता है परन्तु उपर्युक्त प्रस्तुत विचार विषय को स्पष्ट कर रहे हैं, ऐसा हमारा अनुमान है। आशा है कि अन्य आर्य विद्वान इस विषय पर विचार कर लेखों के माध्यम से अनुग्रहित करेंगे।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**